जनवाचन आंदोलन

जन वाचन आंदोलन का मकसद है। किताबों को गाँव-गाँव ले जाना, इन किताबों को नवपाठकों के बीच पढ़कर सुनाना और पढ़वाकर सुनना। गाँव की जनता के पास आज भी पढ़ने-लिखने के लिए स्तरीय किताबें नहीं हैं और जो हैं भी वे बेहद महँगी हैं। भारत ज्ञान विज्ञान समिति ग्रामीण जन तक कम कीमत और सरल भाषा में देशभर के मशहूर लेखकों की किताबें पहुँचाना चाहती है, ताकि गाँव-गाँव में जन वाचन, पढ़ाई और पुस्तकालय संस्कृति पैदा हो सके। संपूर्ण साक्षरता अभियान से जो नवपाठक निकलकर सामने आए हैं, वे अपने साक्षरता के अर्जित कौशल को बनाए रख सकें, उनके सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक चेतना का स्तर बढ़े और वे जागरूक होकर अपने बुनियादी हकों की लड़ाई के लिए लामबंद हो सकें, यह इस अभियान का प्राथमिक उद्देश्य है। भारतीय लोकतंत्र की रक्षा के लिए गाँव के लोग आगे आएँ, इसके लिए भी इस तरह की चेतना का विकास जरूरी है। साक्षरता केवल अक्षर सीखने का काम नहीं है, यह पूरी दुनिया को जानने का काम है।

भारत ज्ञान विज्ञान समिति

मूल्य : 10 रुपये

गुलेल का खेल

भीष्म साहनी
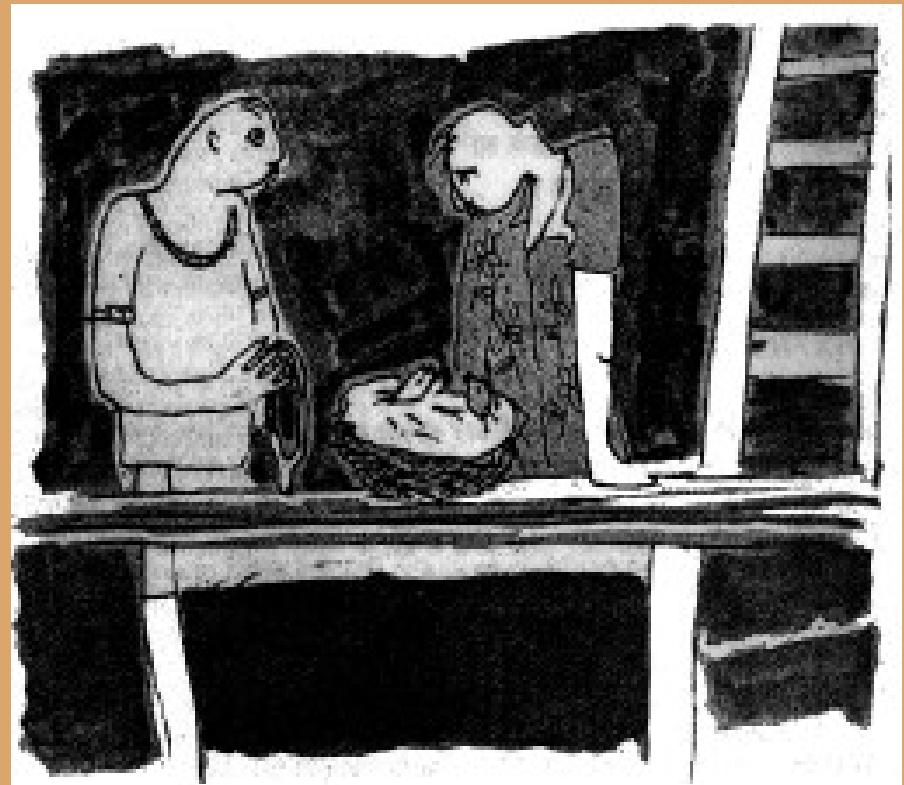
भारत ज्ञान विज्ञान समिति

गुलेल का खेल : भीष्म साहनी
Gulel Ka Khel : Bhishm Sahni

नवपाठकों के लिए भारत ज्ञान विज्ञान समिति द्वारा प्रकाशित
'चकमक' से साभार

पुस्तकमाला संपादक: असद ज़ैदी और विष्णु नागर
कार्यकारी संपादक: संजय कुमार
Series Editor : Asad Zaidi and Vishnu Nagar
Executive Editor : Sanjay Kumar

रेखांकन: अक्षय चराटे और पंकज झा
लेजर ग्राफिक्स: अभय कुमार झा

प्रकाशन वर्ष: 1996,1999, 2003

इस किताब का प्रकाशन भारत ज्ञान विज्ञान समिति द्वारा देशभर में चलाए जा रहे जन वाचन आंदोलन के तहत किया गया है ताकि लोगों में पढ़ने-लिखने की आदत पैदा हो सके। इस अभियान का मुख्य उद्देश्य गांव के पाठकों को सस्ती और सरल भाषा में देश के मशहूर रचनाकर्मियों द्वारा लिखी गई उत्कृष्ट पुस्तकें उपलब्ध करवाना है। खासकर उन नवपाठकों के लिए जो देशभर में चलाए गए संपूर्ण साक्षरता अभियान से निकलकर सामने आए हैं।

मूल्य:10 रुपये

Published by ***Bharat Gyan Vigyan Samithi****,* ***Basement of Y.W.A. Hostel No. II, G-Block, Saket , New Delhi - 110017, Phone : 011 - 26569943, Fax : 91 - 011 - 26569773,*** **email: bgvs@vsnl.net**

गुलेल का खेल

भीष्म साहनी
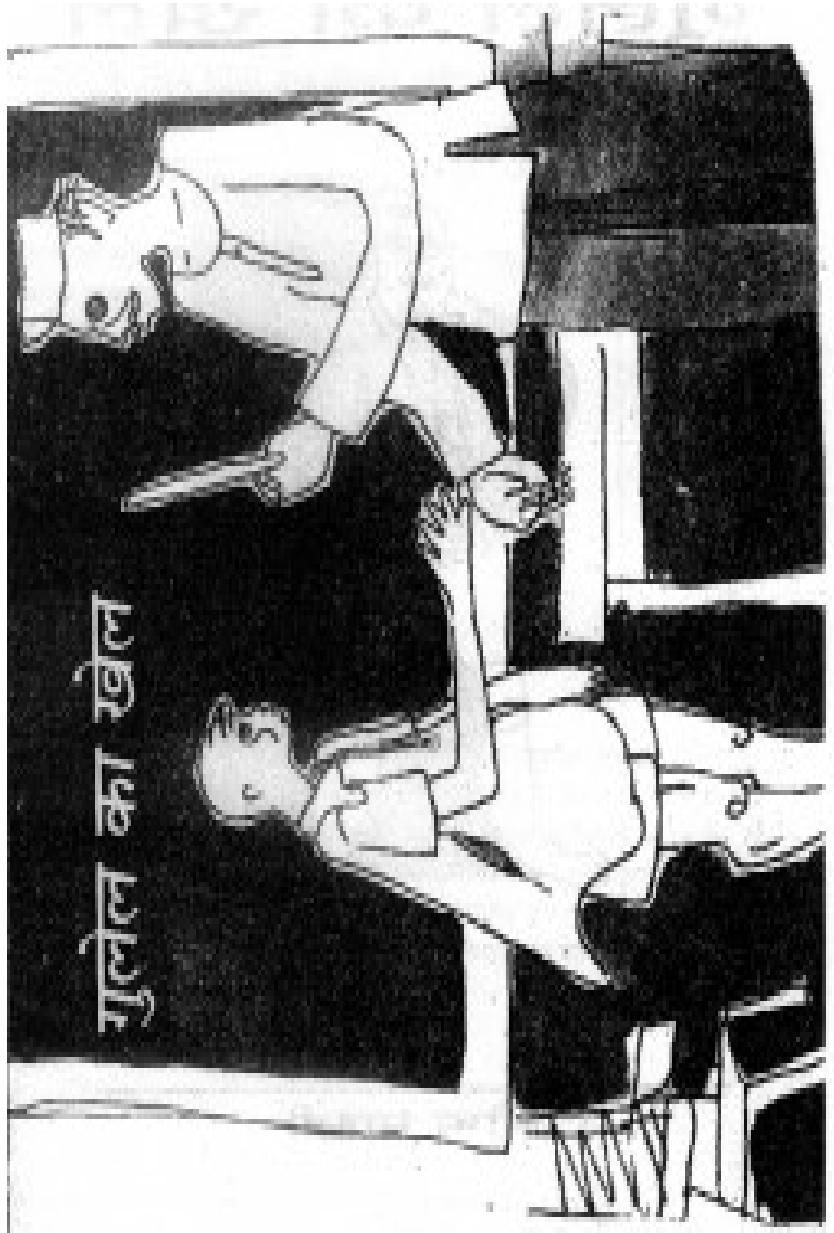
गुलेल का खेल

छठी कक्षा में पढ़ते समय मेरे तरह-तरह के सहपाठी थे। हरबंस नाम का लड़का हुआ करता था जिसके सब काम अनूठे हुआ करते थे। उसे जब सवाल समझ में नही आता तो स्याही की दवात उठाकर पी जाता। उसे किसी ने कह रखा था कि काली स्याही पीने से अक्ल तेज़ होती है।

मास्टरजी गुस्सा होकर उस पर हाथ उठाते तो बेहद ऊँची आवाज़ में चिल्लाने लगता, ''मार डाला! मास्टरजी ने मार डाला! इतनी ज़ोर से चिल्लाता कि आसपास की जमातों की उस्ताद बाहर निकल आते कि क्या हुआ है। मास्टरजी ठिठककर हाथ नीचा कर लेते। यदि वह उसे पीटने लगते तो हरबंस सीधा उनसे चिपट जाता और ऊँची-ऊँची आवाज़ में कहने लगता, ''अबकी माफ कर दो जी! आप बादशाह हो जी! आप अकबर महान हो जी! आप सम्राट हो जी! आप माइ-बाप हो जी, मेरे दादा हो जी, परदादा हो जी!''

क्लास में लड़के हँसने लगते और मास्टरजी झेंपकर उसे

पीटना छोड़ देते। ऐसा था हरबंस। आए दिन बाग में से मेंढक पकड़ लाता और कहता कि हाथ पर मेंढक की चर्बी लगा लें तो मास्टरजी के बेंत का कोई असर नहीं होता; हाथ को पता ही नहीं लगता कि बेंत पड़ा है।

एक दूसरा सहपाठी था–बोधराज। इससे हमसब डरते थे। वह चीउंटी काटता तो लगता जैसे साँप ने डस लिया है। बड़ा ज़ालिम लड़का था। गली की नाली पर जब बर्रे आकर बैठते तो नंगे हाथ से वह बर्रा पकड़कर उसका डंक निकाल लेता, और फिर बर्रे की टाँग में धागा बाँधकर उसे पतंग की तरह उड़ाने की कोशिश करता। बाग में जाते तो फूल पर बैठी तितली को लपककर पकड़ लेता, और दूसरे क्षण उँगलियों के बीच मसल डालता। अगर मसलता नहीं तो फड़फड़ाती तितली में पिन खोंसकर उसे अपनी कापी में टाँक लेता।

उसके बारे में कहा जाता था कि अगर बोधराज को बिच्छू काट जाए तो स्वयं बिच्छू मर जाता है; बोधराज का खून इतना कड़वा है कि उसे कुछ भी महसूस नहीं होता। सारा वक्त उसके हाथ में गुलेल रहता, और उसका निशाना अचूक था। पक्षियों के घोंसलों पर तो उसकी विशेष कृपा रहती थी। पेड़ के नीचे खड़े होकर वह ऐसा निशाना बाँधता कि दूसरे ही क्षण पक्षियों

की चीं-चीं सुनाई देती और घोंसले में से तिनके और थिगलियाँ टूट-टूटकर हवा में छितरने लगते या वह झट से पेड़ पर चढ़ जाता और घोंसले में से अंडे निकाल लाता। जब तक वह घोंसले को तोड़ फोड़ नहीं डाले उसे चैन नहीं मिलता था।

उसे कभी भी कोई ऐसा खेल नहीं सूझता था जिसमें किसी को कष्ट नहीं पहुँचाया गया हो। बोधराज की माँ भी उसे राक्षस कहकर पुकारती थी। बोधराज जेब में तरह तरह की चीज़ें उठाये घूमता, कभी मैना का बच्चा, या तरह तरह के अंडे, या काँटेदार झाऊ चूहा। उससे सभी छात्र डरते थे। किसी के साथ झगड़ा हो जाता तो बोधराज सीधा उसकी छाती में टक्कर मारता, या उसका हाथ काट खाता। स्कूल के बाद हम लोग तो अपने अपने घरों को चले जाते, मगर बोधराज न जाने कहाँ घूमता रहता।

कभी-कभी वह हमें तरह तरह के किस्से सुनाता। एक दिन कहने लगा: ''हमारे घर में एक 'गो' रहती है। जानते हो 'गो' क्या होती है ?''

''नहीं तो, क्या होती है 'गो' ?''

''गो साँप जैसा एक जानवर होता है। बालिश्त-भर लंबा, मगर उसके पैर होते हैं। साँप के पैर नहीं होते।''

हम सिहर उठे।

''हमारे घर में सीढ़ियों के नीचे 'गो' रहती है।'' बोला, ''जिस चीज को वह अपने पंजों से पकड़ ले, वह उसे कभी भी नहीं छोड़ती। कुछ भी हो जाए, नहीं छोड़ती।''

हम फिर सिहर उठे।

''चोर अपने पास 'गो' को रखते हैं। वे दीवार फाँदने के लिये 'गो' का इस्तेमाल करते हैं। वे 'गो' की एक टाँग में रस्सी बांध देते हैं। फिर जिस दीवार को फाँदना हो, रस्सी को झुलाकर दीवार के ऊपर की ओर फेंकते हैं। दीवार के साथ लगते ही 'गो' अपने पंजों से दीवार को पकड़ लेती है। उसका पंजा इतना मजबूत होता है कि फिर रस्सी को दस आदमी भी खींचें तो 'गो' दीवार को नहीं छोड़ेगी। चोर उसी रस्सी के सहारे दीवार फाँद जाते हैं।''

''फिर दीवार को तुम्हारी 'गो' छोड़ती कैसे है?'' मैंने पूछा।

''ऊपर पहुंचकर चोर उसे थोड़ा सा दूध पिलाते हैं। दूध पीते ही 'गो' के पंजे ढीले पड़ जाते हैं।''

इसी तरह के किस्से बोधराज हमें सुनाता।

उन्हीं दिनों मेरे पिताजी की तरक्की हुई और हम लोग एक बड़े घर में जाकर रहने लगे। घर नहीं था, बंगला था, मगर पुराने ढंग का, और शहर के बाहर। फर्श ईंटों के, छतें ऊँची-ऊँची और ढालवां, कमरे बड़े-बड़े, लेकिन दीवारों में लगता जैसे गारा भरा हुआ है। बाहर खुली जमीन थी और पेड़-पौधे थे। घर तो अच्छा था मगर बड़ा खाली-खाली सा था और शहर से दूर होने के कारण
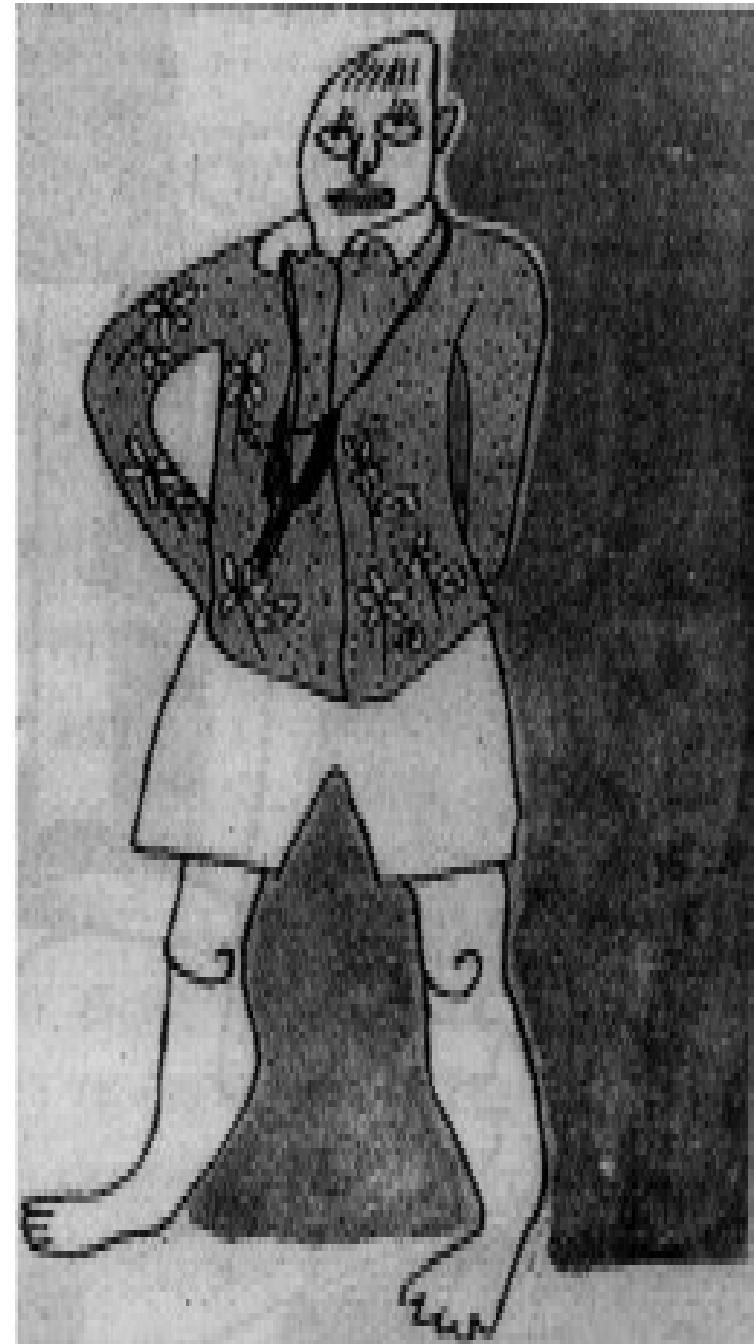
मेरा दोस्त यार भी यहाँ पर कोई नहीं था।

तभी वहाँ बोधराज आने लगा। शायद उसे मालूम हो गया था कि वहाँ शिकार अच्छा मिलेगा, क्योंकि उस पुराने घर में और घर के आंगन में अनेक पक्षियों के घोंसले थे, आस-पास बंदर घूमते थे, और घर के बाहर झाड़ियों में नेवलों के दो-एक बिल थे। घर के पिछले हिस्से में एक बड़ा कमरा था। जिसमें माँ ने फालतू असबाब भरकर गोदाम सा बना दिया था। यहाँ पर कबूतरों का डेरा था। दिनभर वहाँ पर गुटरगूँ-गुटरगूँ चलती रहती। वहीं पर टूटे रोशनदान के पास एक मैना का भी घोंसला था। कमरे के फर्श पर पंख और टूटे अंडे और घोंसलों के तिनके बिखरे रहते।

बोधराज आता तो मैं उसके साथ घूमने निकल जाता। एक बार वह झाऊ चूहा उठा लाया, जिसका काला थूथना और कंटीले बाल देखते ही मैं डर गया था। माँ को मेरा बोधराज के साथ घूमना अच्छा नहीं लगता था, मगर वह जानती थी कि मैं अकेला घर में पड़ा-पड़ा क्या करूँगा। माँ भी उसे राक्षस कहती थी और उसे बहुत समझाती थी कि गरीब जानवरों को तंग नहीं किया करे।

एक दिन माँ मुझसे बोली, ''अगर तुम्हारे दोस्त को घोंसले तोड़ने में ही मज़ा आता है तो उससे कहो कि हमारे गोदाम में से घोंसले साफ कर दे। चिड़ियों ने कमरे को बहुत गंदा कर रखा है।''

''मगर माँ, तुम खुद ही तो कहती थी: जो घोंसले तोड़ता है उसे पाप चढ़ता है।''

''मैं यह थोड़े ही कहती हूँ कि पक्षियों को मारे। यह तो पक्षियों पर गुलेल चलाता है, उन्हें मारता है। घोंसला हटाना तो दूसरी बात है।''

चुनांचे जब बोधराज घर पर आया तो मैं घर का चक्कर लगाकर

उसे पिछवाड़े की ओर गोदाम में ले गया। गोदाम पर ताला चढ़ा था। हम ताला खोलकर अंदर गए। शाम हो रही थी और गोदाम के अंदर झुटपुटा-सा छाया था। कमरे में पहुँचे तो मुझे लगा जैसे हम किसी जानवर की माँद में पहुँच गए हों। बला की बू थी, और फर्श पर बिखरे हुए पंख और पक्षियों की बीट।

सच पूछो तो मैं तो डर गया। मैंने सोचा, यहाँ भी बोधराज अपना घिनौना शिकार खेलेगा, यह घोंसलों को तोड़-तोड़कर गिराएगा, पक्षियों के पर नोचेगा, उनके अंडे तोड़ेगा, ऐसी सभी बातें करेगा, जिनसे मेरा दिल दहलता था। न जाने माँ ने क्यों कह दिया था कि इसे गोदाम में ले जाओ और इससे कहो कि गोदाम में से घोंसले साफ कर दे। मुझे तो इसके साथ खेलने को भी मना करती थी और अब कह दिया कि घोंसले तोड़ो।

मैंने बोधराज की ओर मुड़कर देखा तो उसने गुलेल संभाल ली थी, और बड़े चाव से छत के नीचे मैना के घोंसले की ओर देख रहा था। गोदाम की ढालवाँ छतें तिकोन-सा बनाती थीं। दो पल्ले ढालवाँ उतरते थे और नीचे एक लंबा शहतीर कमरे के आरपार डाला गया था। इसी शहतीर पर, टूटे हुए रोशनदान के पास ही, एक बड़ा सा घोंसला था, जिसमें से उभरे हुऐ तिनके, रूई के फाहे और लटकती थिगलियाँ हमें नज़र आ रही थीं। यह मैना का घोंसला था। कबूतर अलग से, दूसरी ओर शहतीर पर गुटरगूँ-गुटरगूँ कर रहे थे और सारा वक्त शहतीर के ऊपर चहलकदमी कर रहे थे।

''घोंसले में मैना के बच्चे हैं,'' बोधराज ने कहा और अपनी गुलेल साध ली।

तभी मुझे घोंसले में से दो छोटे-छोटे बच्चों की पीली-पीली

नन्ही चोंचें झाँकती नज़र आईं।

''देखा ?'' बोधराज कह रहा था, ''यह विलायती मैना है, इधर घोंसला नहीं बनाती। इनके माँ-बाप ज़रूर अपने काफिले से बिछड़ गए होंगे और यहाँ आकर घोंसला बना लिया होगा।''

''इनके माँ-बाप कहाँ हैं ?'' मैंने पूछा।

''चुग्गा लेने गए हैं। अभी आते ही होंगे,'' कहते हुए बोधराज ने गुलेल उठाई।

मैं उसे रोकना चाहता था कि घोंसले पर गुलेल नहीं चलाए, पर तभी बोधराज की गुलेल से फर्रर्रर की आवाज निकली और इसके बाद ज़ोर की टन् की आवाज़ आई। गुलेल का कंकड़ घोंसले से न लगकर सीधा छत पर जा लगा था जहाँ टीन की चादरें लगी थीं।

दोनों चोंच घोंसले के बीच गायब हो गईं। सकता-सा छा गया। लगता था मैना के बच्चे सहमकर चुप हो गए हैं।

तभी बोधराज ने गुलेल से एक और वार किया। अबकी कंकड़ शहतीर से लगा। बोधराज अपने अचूक निशाने पर बड़ा अकड़ा करता था। दो निशाने चूक जाने पर वह बौखला उठा। अबकी बार वह थोड़ी देर तक चुपचाप खड़ा रहा। जिस वक्त मैना के बच्चों ने अपनी चोंचें फिर से उठाईं और घोंसले के बाहर झाँककर देखने लगे, उसी समय बोधराज ने तीसरा वार किया। अब की कंकड़ घोंसले के किनारे पर लगा। तीन-चार तिनके और रूई के गोले उड़े और छितरा-छितराकर फर्श की ओर उतरने लगे। लेकिन घोंसला गिरा नहीं।

बोधराज ने फिर से गुलेल तान ली थी। तभी कमरे में एक

भयानक-सा साया डोल गया। हमने नज़र उठाकर देखा। रोशनदान में से आने-वाली रोशनी सहसा ढक गई थी। रोशनदान के सींखचे पर एक बड़ी सी चील पर फैलाए बैठी थी। हम दोनों ठिठककर उसकी ओर देखने लगे। रोशनदान में बैठी चील भयावह-सी लग रही थी।

''यह चील का घोंसला होगा। चील अपने घोंसले में लौटी है।'' मैंने कहा।

''नहीं, चील का घोंसला यहाँ कैसे हो सकता है ? चील अपना घोंसला पेड़ों पर बनाती है। यह मैना का घोंसला है।''

उसी वक्त घोंसले में चीं-चीं की ऊँची आवाज़ आने लगी। घोंसले में बैठे मैना के बच्चे पर फड़फड़ाने और चिल्लाने लगे।

हम दोनों निश्चेष्ट-से खड़े हो गए, यह देखने के लिए कि चील अब क्या करेगी। हम दोनों टकटकी बाँधे चील की ओर देखे जा रहे थे।

चील रोशनदान में से अंदर आ गई। उसने अपने पर समेट लिए थे और रोशनदान पर से उतरकर गोदाम के आर-पार लगे शहतीर पर उतर आई थी। वह अपना छोटा-सा सिर हिलाती कभी दाएँ, कभी बाएँ देखने लगती। मैं चुप था, बोधराज भी चुप था, न जाने वह क्या सोच रहा था।

घोंसले में से बराबर चीं-चीं की आवाज़ आ रही थी, बल्कि पहले से कहीं ज्यादा बढ़ गई थी। मैना के बच्चे बुरी तरह डर गए जान पड़ते थे।

''यह यहाँ रोज आती होगी।'' बोधराज बोला।

अब मेरी समझ में आया कि क्यों फर्श पर जगह-जगह पंख
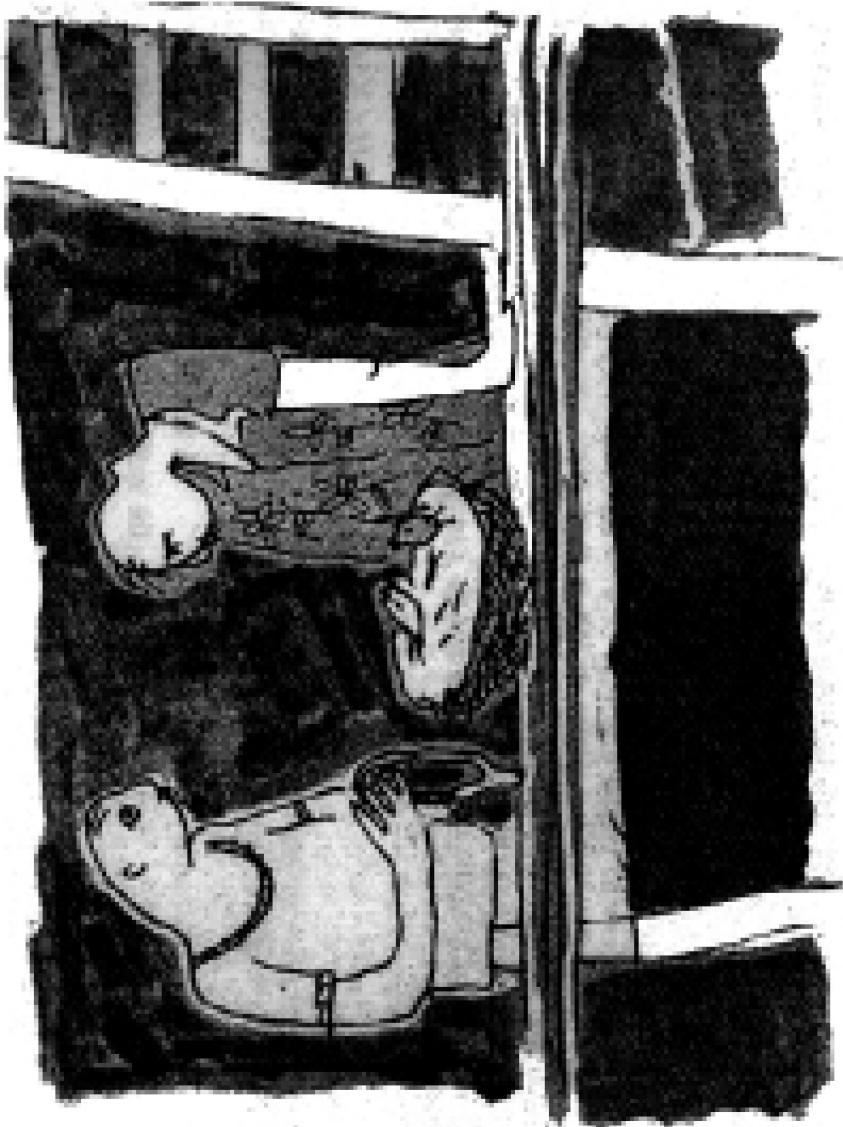
और माँस के लोथड़े बिखरे पड़े रहते हैं। ज़रूर आए-दिन चील घोंसले पर झपट्टा मारती होगी। माँस के टुकड़े और खून-सने पर इसी की चोंच से गिरते होंगे।

बोधराज अभी भी टकटकी बाँधे चील की ओर देख रहा था।

अब चील धीरे-धीरे शहतीर पर चलती हुई घोंसले की ओर बढ़ने लगी थी और घोंसले में बैठे मैना के बच्चे पर फड़फड़ाने और चीखने लगे थे। जब से चील रोशनदान पर आकर बैठी थी, मैना के बच्चे चीखे जा रहे थे। बोधराज अभी भी मूर्तिवत खड़ा चील की ओर ताके जा रहा था।

मैं घबरा उठा। मैं मन में बार-बार कहता, क्या फर्क पड़ता है अगर चील मैना के बच्चों को मार डालती है या बोधराज अपनी गुलेल से उन्हें मार डालता है ? अगर चील नहीं आती तो इस वक्त तक बोधराज ने मैना का घोंसला नोच भी डाला होता।

तभी बोधराज ने गुलेल उठाई और सीधा निशाना चील पर बाँध दिया।

''चील को मत छेड़ो, वह तुम पर झपटेगी।''

मगर बोधराज ने नहीं सुना और गुलेल चला दी। चील को निशाना नहीं लगा। कंकड़ छत से टकराकर नीचे गिर पड़ा और चील ने अपने बड़े-बड़े पंख फैलाए और नीचे सिर किए घूरने लगी।

''चलो, यहाँ से निकल चलें,'' मैंने डरकर कहा।

''नहीं, हम चले गए तो चील बच्चों को खा जाएगी।''

उसके मुँह से यह वाक्य मुझे बड़ा अटपटा लगा। वह स्वयं ही तो घोंसला तोड़ने के लिए गुलेल उठा लाया था।

बोधराज ने एक और निशाना बाँधा। मगर चील उस शहतीर पर से उड़ी और गोदाम के अंदर पर फैलाए तैरती हुई-सी आधा चक्कर काटकर फिर से शहतीर पर जा बैठी। घोंसले में बैठे बच्चे बराबर चीं-चीं किए जा रहे थे।

बोधराज ने झट-से गुलेल मुझे थमा दी और जेब में से पाँच-

सात कंकड़ निकालकर मेरी हथेली पर रखे।

''तुम चील पर गुलेल चलाओ। चलाते जाओ। उसे बैठने नहीं देना।'' उसने कहा और स्वयँ भागकर दीवार के साथ रखी मेज को घसीटकर फर्श के बीचोंबीच लाने लगा।

मैं गुलेल चलाना नहीं जानता था। दो-एक बार मैंने कंकड़ रखकर गुलेल चलाई, लेकिन इस बीच चील गोदाम के दूसरे शहतीर पर जा बैठी थी।

बोधराज मेज को घसीटता हुआ ठीक मैना के घोंसले के नीचे ले आया। फिर उसने मेज पर एक टूटी हुई कुर्सी चढ़ा दी, और फिर उछलकर मेज पर चढ़ गया और वहाँ से कुर्सी पर जा खड़ा हुआ। फिर बोधराज ने दोनों हाथ ऊपर को उठाए, जैसे-तैसे अपना संतुलन बनाए हुए उसने धीरे-से दोनों हाथों से घोंसले को शहतीर पर से उठा लिया और धीरे-धीरे कुर्सी पर से उतरकर मेज पर आ गया और फिर घोंसले को थामे ही थामे छलाँग लगा दी।

''चलो, चलो, बाहर निकल चलो।'' उसने कहा और दरवाजे की ओर लपका।

गोदाम से निकलकर हम गराज में आ गए। गराज में एक ही बड़ा दरवाजा था, और दीवार में छोटा-सा एक झरोखा। यहाँ भी गराज के आर-पार लकड़ी का एक शहतीर लगा था।

''यहाँ पर चील नहीं पहुँच सकती,'' बोधराज ने कहा और इधर-उधर देखकर घोंसले को एक टूटे बक्से पर चढ़कर शहतीर के ऊपर रख दिया।

थोड़ी देर में घोंसले में बैठे मैना के बच्चे चुप हो गए।

बोधराज बक्से पर चढ़कर मैना के घोंसले में झाँकने लगा। मैंने सोचा, अभी हाथ बढ़ाकर दोनों बच्चों को एक साथ उठा लेगा, जैसा वह अक्सर किया करता था, फिर भले ही उन्हें जेब में डालकर घूमता फिरे। मगर उसने ऐसा कुछ नहीं किया। वह देर तक घोंसले के अंदर झाँकता रहा। फिर बोला:

''थोड़ा पानी लाओ, इन्हें प्यास लगी है। इनकी चोंच में बूँद-बूँद पानी डालेंगे।''

मैं बाहर गया और एक कटोरी में थोड़ा-सा पानी ले आया। दोनों नन्हें-नन्हें बच्चे चोंच ऊपर को उठाए हांफ रहे थे। बोधराज ने उनकी चोंच में बूँद-बूँद पानी डाला और बच्चों को छूने से मुझे मना कर दिया, न ही स्वयं उन्हें छुआ।

''इन बच्चों के माँ-बाप यहाँ कैसे पहुँचेंगे?'' मैंने पूछा।

''वे इस झरोखे में से आ जाएँगे। वे अपने आप इन्हें ढूंढ़ निकालेंगे।''

हम देर तक गराज में बैठे रहे। बोधराज देर तक मनसूबे बनाता रहा कि वह कैसे रोशनदान को बंद कर देगा, ताकि चील कभी गोदाम के अंदर न आ सके। उस शाम वह चील की ही बातें करता रहा।

दूसरे दिन जब बोधराज मेरे घर आया तो न तो उसके हाथ में गुलेल थी और न जेब में कंकड़, बल्कि जेब में बहुत-सा चुग्गा भरकर लाया था और हम दोनों देर तक मैना के बच्चों को चुग्गा डालते और उनके करतब देखते रहे थे।

❑❑❑❑